

वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

October- 2026

स्वानुभूतिप्रकाश



प्रकाशक :

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

भावनगर - ३६४ ००१.

उत्तम क्षमावणी पर्वकी महिमा

गुणग्राही पूज्य भाईश्री शशीभाईके जीवनका एक प्रेरक प्रसंग...



यह जो (क्षमापना) का व्यवहार है, यह भी जैन संप्रदाय के सिवाय कहीं नहीं है। वैर और वैमनस्य को अंतःकरणसे धो डालने के लिये बहुत ही उच्च कोटि का यह व्यवहार है। मेरे हाथमें तो उस दिन तक जैनदर्शनके शास्त्र आये नहीं थे। लेकिन मेरे साथ मुम्बईमें काम करने वाले भाई श्वेताम्बर जैन थे। वैसे तो साथमें काम करने में थोड़ी नोक-झोंक तो हो ही जाती है। संवत्सरीके दिन वे प्रतिक्रमण करके आये और मुझसे क्षमा माँगी, तो मुझे ऐसा लगा कि ओहो! मेरे से उम्रमें वे बहुत बड़े थे, क्षमा माँग रहे हैं! इन लोगों का यह व्यवहार तो बहुत

ज़बरदस्त है। बहुत ही अच्छा है। यानी इस तरीके से किसी को भी छाप पड़े। गुणद्रष्टि हो और गुण के प्रति यदि आकर्षण हो तो यह व्यवहार ऐसा है कि छाप पड़े बिना रहे ही नहीं।

जिनके साथ संबंध बिगड़ गए हों, जिनके साथ आपसमें किसी प्रकारकी कड़वाहट हो गई हो, वैर हुआ हो, वैमनस्य हो गया हो, व्यवहारमें कुछ भी ऊँच-नीच हो गई हो। जो शुद्ध अंतःकरण से इन्सान क्षमा माँगे तो सामनेवालेके आत्मा के ऊपर (असर हुए बिना) रहे ही नहीं। गुण-दोष की दृष्टिसे व्यवहारकी जो यह व्यवस्था है, समन्वय है ये बहुत ही उच्च कोटि का है। यह भले ही बाह्य व्यवहार है। परन्तु गुण-दोष की दृष्टि से किसी पर भी यह छाप छोड़ जाये ऐसी यह बात है। इन लोगों में यह व्यवहार है। अन्य कहीं भी यह व्यवहार देखनेमें नहीं आता।

(प्रवचनांश... 'श्रीमद् राजचंद्र' पत्रांक-८०१, दि.-०४-०८-१९९२, प्रवचन नं.-३९४, 'राजहृदय' (गुजराती) भाग-१७, पन्ना क्र. ३०७, ३०८)

*

उत्तम क्षमापना (भाद्रपद वदि एकम)

आज दिन पर्यंत वीतराग देव-गुरु-शास्त्र प्रति या किसी भी जीव के प्रति जो कुछ भी अविनय और आशातना के परिणाम हुए हों उनकी शुद्ध अंतःकरणपूर्वक क्षमा याचते हैं। वीतराग देव-गुरु-शास्त्र एवं वीतराग आप्त पुरुष द्वारा बोधित परमतत्त्व के प्रति सदा शरणागतरूप से रहें यही भावना आज के दिन भाते हैं।

— 'स्वानुभूतिप्रकाश' परिवार

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५२, अंक-३४६, वर्ष-२८, अक्टूबर-२०२६

कहानरत्न किरणें!!

– अध्यात्म युगसृष्टा
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
(‘परमागमसार’में से साभार उद्धृत)

एकान्त दुःखके जोरमें-रागसे पृथक् हो सके, ऐसा सम्भव नहीं; परन्तु द्रव्य-दृष्टिके जोरसे रागसे भिन्न हो सकता है। आत्माको पहचाने बिना – जाने बिना जाए कहाँ! आत्माको जाना हो, उसका अस्तित्व अनुभूत किया हो तो रागसे भिन्न होकर आत्मामें लीन हो सकते हैं। ४५०

*

प्रश्न :- निर्मल पर्यायको तो अन्तर्लीन बतलायी है न?

उत्तर :- यह पर्याय तो स्वसन्मुख ढली है जिससे उसे अन्तर्लीन कहा है; पर उससे पर्याय कोई ध्रुवमें मिल नहीं जाती। ध्रुवके आश्रयसे द्रव्य-दृष्टि प्रकट हुयी, फिर चारित्रकी शुद्धि भी पर्यायके आश्रयसे नहीं होती। त्रिकाली अन्तःतत्त्व जो ध्रुव-तल-दल है, उसके आश्रयसे ही चारित्रकी शुद्धि होती है – यह वस्तुस्थिति है, भगवानके वचन हैं, यह भेदज्ञानकी पराकाष्ठाका उपदेश है। प्रभु! निर्मल पर्याय बहिर्तत्त्व है, उस निर्मल पर्यायके आश्रयसे स्थिर नहीं होते, आगे नहीं बढ़ते; पर अन्तःतत्त्व जो ध्रुव तत्त्व है, उसके आश्रयसे ही (शुद्धि) प्रकट होती है, स्थिर होती है और प्रगाढ़ होती है। दया-दान आदिके शुभ परिणाम तो मलिन-बहिर्तत्त्व हैं



व सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके परिणाम निर्मल-बहिर्तत्त्व हैं। द्रव्य-दृष्टि तो एक शुद्ध अन्तःतत्त्वका अवलम्बन लेती है। ४५१

*

ज्ञायक-ध्रुव शुद्ध तत्त्व – उसका ज्ञान कर, उसकी प्रतीति कर, उसमें रमण कर। एक आत्माराम होकर क्या अनुभव करता है, सो कहते हैं – समयदृष्टि जीव अपने स्वरूपको जानकर, उसकी प्रतीति कर, स्वरूपाचरण कर – ऐसा अनुभव करता है कि मैं तो चैतन्य मात्र ज्योति हूँ। “शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यधन, स्वयंज्योति, सुखधाम, मैं हूँ।” चैतन्य ज्ञान-दर्शनमात्र ज्योति हूँ, मैं रागादिरूप बिल्कुल

नहीं हैं। धर्मी स्वयंको चैतन्यमात्र-ज्योतिरूप आत्मा मानते हैं; अपनेको रागरूप नहीं मानते। ४५२

*

केवली और श्रुतकेवलीमें अन्तर नहीं; अतः विशेष जाननेकी आकांक्षारूप आकुलतासे बस होओ। केवली और श्रुतकेवलीमें हीनाधिक जानने रूप भेद है; पर यह भेद अत्यंत गौण है। केवली एक साथ परिणमित होते हुए समस्त चैतन्य विशेषों वाले केवलज्ञान द्वारा शुद्ध-अखंड - एक आत्माको, आत्मासे, आत्मामें, अनुभव करते हैं; और श्रुतकेवली क्रमसे परिणमित होते हुए कितने ही चैतन्य विशेषों वाले श्रुतज्ञान द्वारा शुद्ध-अखंड - एक आत्माको आत्मासे, आत्मामें, अनुभव करते हैं। ऐसे आत्मानुभूतिमें श्रुतकेवली, केवली तुल्य ही हैं। स्वरूप-स्थिरताकी तारतम्यतारूप भेद है; अतः बहुत जाननेकी इच्छारूप क्षोभको छोड़कर केवलज्ञानकी प्राप्तिके उपायरूप स्वरूपमें निश्चल रहना ही योग्य है। ४५३

*

ज्ञानी उसे कहते हैं कि जो त्रिकाली-ज्ञायकको पकड़े व उसकी पर्यायमें वीतरागता प्रगट होने पर भी पर्यायमें रुके नहीं; उसकी दृष्टि तो त्रिकाली-ध्रुव पर ही टिकी है। धर्मदशा प्रकट हो - निर्मलपर्याय प्रकट हो - पर ज्ञानी इन पर्यायोंमें नहीं रुकता। ४५४

*

त्रिकाली - ध्रुव आत्म-द्रव्यको पकड़ने पर ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, उसे पकड़नेपर ही चारित्र होता है, उसे पकड़ने पर ही केवलज्ञान होता है। धर्मीकी दृष्टि आत्म-द्रव्यपरसे नहीं खिसकती; और जो यह दृष्टि वहाँसे खिसक कर वर्तमान

पर्यायमें रुके, एक समयकी पर्यायमें चोंटे, पर्यायकी रुचि हो जाए - तो वस्तुकी दृष्टि छूट जाए और वह मिथ्यादृष्टि हो जाए। जो एक समयकी पर्यायकी महिमा-महत्ता लगे तो द्रव्य परसे दृष्टि खिसक जाती है। एक समयकी निर्मल-पर्यायकी भी रुचि होजाए तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। ४५५

*

परिपूर्ण कृतकृत्य भगवत्-स्वरूप भगवान आत्मोको साध। दृष्टि और दृष्टिका विषय, यह तो समझाने हेतु भेद कथन है। दृष्टिको द्रव्य-सम्मुख ढाल। पर्यायमें खड़े रहकर “यह द्रव्य है” - ऐसा नहीं साध सकता। ध्रुव स्तम्भ है, उसीमें निर्विकल्प रूपसे अहम् कर। ४५६

*

भगवानकी वाणीसे नहीं, उनके निमित्तसे हुए परलक्ष्यीज्ञानसे भी नहीं; परन्तु जो स्वलक्ष्यी भावश्रुतज्ञान है उससे आत्माकी अनुभूति होती है। जिस ज्ञान द्वारा आत्मा अनुभूत हो वह भावश्रुतज्ञान परकी अपेक्षा रहित है। श्रुत भी निरर्थक है, वैसे ही श्रुतसे हुआ ज्ञान भी निरर्थक है, याने कि भावश्रुतको उसकी अपेक्षा नहीं। ऐसे भावश्रुतज्ञानसे आत्माको जान, या केवलज्ञानसे आत्माको जाने - ऐसे जाननेमें, अनुभवमें अन्तर नहीं है। अतः ज्ञानमें श्रुत-उपाधिकृत भेद नहीं है। श्रुत-ज्ञान कहा, इसलिए उसमें श्रुत-उपाधिकृत भेद है - ऐसा नहीं है। ४५७

*

सम्यग्दर्शन याने? - कि जैसा और जितना तत्त्व है उसकी वैसी ही प्रतीति होना सो सम्यग्दर्शन है। महा अस्तित्वमयी प्रकट वस्तु है वह अनन्तकाल

और अनन्त-भव बीत जाने पर भी ऐसी ही है – वाह तत्त्व!! चाहे जैसे परिणाम हुए फिर भी वस्तुमें विभ्रमता अथवा न्यूनता नहीं आयी। महा ग्रहीतमिथ्यात्वके परिणाम हुए तो भी जो वस्तु है उसमें कोई विकार या मलिनता नहीं आयी – यह सर्वज्ञ परमात्माकी पुकार है। ४५८

*

पांच-छः गाँव चलें तो थकान मिटानेके लिए विश्राम लेते हैं न! यहाँ तो अनन्त-अनन्तभव किए तो भी थकान नहीं लगी। सर्वज्ञदेव कहते हैं कि तूँ स्वभावमें विश्राम ले – तेरी थकान उतर जाएगी। शुद्ध चैतन्य भगवानके आश्रय से शुद्ध परिणति करना – यह अपूर्व। ऐसी सम्यक् परिणति करे तो शाश्वत सुखको प्राप्त हो, अनन्त-अनन्त गुणोंकी पूर्ण पर्यायें प्रकटताको प्राप्त हों। अतः बाहरके हर्ष-उत्साहके सबड़के (रसासक्ति) छोड़ दे, यह भान्ति छोड़ दे और जिनवरदेव द्वारा उपदिष्ट शुद्ध सम्यक् परिणति कर तो तूँ अवश्य शाश्वत-सुखको प्राप्त होगा। ४५९

*

भगवानकी वाणी श्रुत है-शास्त्र है। शास्त्र पौद्गलिक है जिससे वह ज्ञान नहीं, उपाधि है और इस श्रुतसे होने वाला ज्ञान – यह भी उपाधि है; क्योंकि श्रुतके लक्ष्यवाला वह ज्ञान पर-लक्ष्यीज्ञान है। पर-लक्ष्यीज्ञान स्वको नहीं जान सकता; अतः उसे भी श्रुतकी भांति उपाधि बतलाया है। जैसे सत्-शास्त्र सो ज्ञान नहीं, व्यर्थकी चीज है, उपाधि है, वैसे ही यह श्रुतसे हुआ ज्ञान भी निरर्थक है, उपाधि है। आहा हा! वीतरागकी क्या शैली है। परलक्ष्यी ज्ञानको भी श्रुत (शास्त्र) की भांति उपाधि कहते हैं। स्वज्ञानरूप ज्ञातिक्रिया द्वारा आत्मा

अनुभूत होता है। भगवानकी वाणी द्वारा आत्मा अनुभूत नहीं होता। ४६०

*

प्रश्न :- विकल्प हमारा पीछा नहीं छोड़ते।

उत्तर :- विकल्पोंने तुझे पकड़ा ही नहीं, तूने विकल्पोंको पकड़ा है। तू परमानन्द स्वरूपसे परिपूर्ण भगवान है। – उसे दृष्टिमें नहीं लेता; जिससे विकल्प तुझे पकड़े हुए लगते हैं। तूने, तेरे भगवानको भ्रमसे भूलकर, विकल्पोंको पकड़ा है। तूँ खिसक जा न! तूँ विकल्पोंका लक्ष्य छोड़कर अपने भगवानका लक्ष्य कर – तो विकल्प तुझे पकड़े हुए नहीं लगेंगे। विकल्पोंमें कहीं भी सुख-शान्ति नहीं है, जहाँ सुख-शान्ति भरी है वहाँ जा! सुख-शान्तिका भंडार – ऐसे भगवानको पकड़ (आलिंगन कर)। तेरे अन्तरमें पूर्ण सुख-शान्ति भरी है। विकल्प तो बाहर हैं, उनमें कहीं भी सुख-शान्ति नहीं। तेरे अन्तरमें विकल्प रहित वस्तु है, उसमें सुख-शांति भरी है, प्रथम उसीका लक्ष्य और प्रतीति कर, विकल्पसे भेदज्ञान कर। स्थिरता अनुसार क्रमशः सभी विकल्प छूट जायेंगे। ४६१

*

प्रश्न :- आत्मज्ञान करनेके लिए बहुत-बहुत शास्त्रोंका अभ्यास करना पड़ता है, इसकी जगह अन्य कोई सरल मार्ग बतलाइए न?

उत्तर :- आत्मज्ञानके लिए बहुत शास्त्र पढ़नेकी बात कहाँ है? तेरी पर्याय दुःखके कारणोंकी ओर ढलती है, उसे सुखके कारणभूत स्वभाव सन्मुख ढाल – इतनी ही बात है। स्वयं भगवान आत्मा! अनन्त-अनन्त गुण संपन्न ज्ञानानन्द-स्वरूप है, इसकी महिमा लाकर स्व-सन्मुख हो – इतनीसी बात है। तेरी ज्ञानपर्यायको

द्रव्य सन्मुख ढालना - यही संक्षिप्त और यथार्थ बात है। ४६२

*

प्रश्न :- आप बहुत सूक्ष्मतामें और बहुत गहरायीमें ले जाते हैं?

उत्तर :- वस्तु ऐसे ही स्वभाववाली है। पर्याय उपर-उपर है, और द्रव्य गहराई, बहुत गहराईमें है। अनन्त ...अनन्त...अनन्त गहराई है। क्षेत्र अपेक्षासे नहीं, किन्तु भावसे अनन्त...अनन्त...अनन्त सामर्थ्यरूप गहराई है - वहाँ ज्ञान-पर्यायको धीरजसे ले जाने पर भगवानसे भेंट होती है। ४६३

*

प्रश्न :- शुभरागको ज्ञानी हेय मानते हैं, पर षोडशकारण-भावना तो भाते हैं न?

उत्तर :- ज्ञानी षोडशकारण-भावना नहीं भाते; पर उस प्रकारका राग आ जाता है। ज्ञानीकी भावना तो स्वरूपमें स्थिर होनेकी होती है, पर स्वरूपमें स्थिर न रह सके तब हेयबुद्धि पूर्वक शुभ-राग आ जाते हैं; ज्ञानी उनके ज्ञाता हैं - कर्ता नहीं। ४६४

*

जगतमें पापको पाप तो सभी कहते हैं, पर अनुभवी-ज्ञानीजन तो पुण्यको भी पाप कहते हैं। हिंसा-झूठ-चोरी आदिको तो (सारा) जगत पाप मानता है, परन्तु दया-दान-पूजा-भक्ति आदिके शुभरागको ज्ञानीजन ही पाप कहते हैं; क्योंकि स्वरूपमेंसे पतित होने पर शुभराग उठते हैं, अतः वे भी पाप हैं। शुभ-रागमें स्वकी हिंसा होती है, इसीलिए 'प्रवचनसार' गाथा ७७ में कहा है कि 'जो पुण्य-पापमें भेद मानते हैं- अन्तर मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि घोर संसारमें धक्के खाते फिरेंगे। आहाहा!! ये बातें तो जिसे अन्तरमें भवका भय

लगा हो व भयसे छूटना हो उसे ही जचे ऐसी हैं। ४६५

*

भाई! पदार्थकी स्वतंत्रताकी बात जाननेके लिए बहुत पुरुषार्थ चाहिए। भिन्न तत्त्वको भिन्न तत्त्व रूपसे जानना; भिन्न तत्त्वका अन्य भिन्न रहा हुआ तत्त्व कुछ भी नहीं कर सकता - ये बातें बहुत सूक्ष्म हैं, इन्हें यथार्थ रूपसे जाननेमें बहुत पुरुषार्थकी आवश्यकता है। ४६६

*

जैसे केवलज्ञानमें तीन कालकी पर्यायें दिखाई देती हैं, वैसे ही पदार्थोंमें क्रमबद्ध पर्यायें होती हैं। केवलज्ञानमें जाना इसलिए नहीं, परन्तु पदार्थोंकी पर्यायें स्वयं ही स्वकालमें, उसी प्रकार होती है और वैसे ही सर्वज्ञ जानते हैं। आहा हा! पर द्रव्यको करनेकी बात तो दूर, परन्तु स्वयंकी शुद्ध या अशुद्ध पर्यायें जो स्वकालमें जैसी क्रमबद्ध होनी हैं, वैसी ही होती हैं। अतः उन्हें आगे-पीछे करनेका अवकाश नहीं है। मात्र जैसा होता है वैसा जानना ही रहा। जैसे सर्वज्ञ ज्ञाता हैं वैसे ही धर्मी भी ज्ञाता हो गया। क्रमबद्धके निर्णयका तात्पर्य अकर्तापनेरूप वीतरागता है। वह वीतरागता अनन्त पुरुषार्थपूर्वक द्रव्य पर दृष्टि जानेसे होती है। आहा हा! आत्मा सर्वज्ञ स्वभावी है! ४६७

*

सत्स्वरूप - ऐसे आत्मासे परिचय रखना; जैसा जिसको परिचय होगा वैसी ही उसकी परिणति होगी। रागके रसीले संसारी-जीवोंसे परिचय करेगा तो तेरी परिणति गिर जाएगी। जिनको शरीर आदिका प्रेम है, पुण्यका प्रेम है - ऐसे लौकिक-जनोंसे परिचय करेगा तो तेरी परिणति पतित हो जाएगी।

जो लोग मान-सन्मान दें उनके परिचयसे तो तू मर जायेगा। ४६८

*

मुमुक्षु जीव शुभरागमें जुड़ते हैं, पर मुमुक्षुतामें शुद्धात्मा-प्रतिकी शोधक वृत्ति चली नहीं जाती। मुमुक्षु जीवको दया-दान-पूजा-भक्ति आदिके शुभभाव आते अवश्य हैं, परन्तु उनकी वृत्ति और झुकाव शुद्धात्माकी तरफ ही रहा करता है; शुभभावमें तल्लीनता नहीं होती। जिनस्वरूपी भगवान आत्माप्रतिकी शोधक वृत्ति नहीं जाती।

(मुमुक्षुजीव) शुद्धात्माका ध्येय छोड़कर शुभरागका आग्रह नहीं करता। शुभरागसे होगा ...ऐसा नहीं मानता, पर्यायकी अशुद्धताको भी नहीं भूलता, स्वच्छन्द नहीं करता। ४६९

*

प्रश्न :- स्वच्छन्द, याने क्या?

उत्तर :- विकारी पर्याय सो मेरी नहीं, ऐसा मानकर विकारका सेवन करना। अशुद्धता चाहे जितनी हो उसका सेवन करना और ज्ञानीके भोगको निर्जरा कहा है तो हमारे भोगके भाव व विषय-वासनाके भावसे भी निर्जरा होती है - वैसा माने तो स्वच्छन्द है। चाहे जितना विकार हो तो भी मुझे क्या? - ऐसा मानना स्वच्छन्द है। सच्चा मुमुक्षु ऐसा स्वच्छन्द सेवन नहीं करता। पर्यायमें विकार हो उसे अपना अपराध समझता है। ज्ञानमें सही जानता है, पापमें खो नहीं जाता। मुमुक्षुका हृदय द्रवित होता है, वैराग्यमय होता है। ४७०

*

यह ज्ञानकी दिव्यता है। यह ज्ञानस्वभावकी अचिन्त्यता है। जो पर्यायें विद्यमान नहीं हैं, उन्हें ज्ञान विद्यमानवत् जानता है; तो चैतन्य महाप्रभु तो

विद्यमान ही है, भूतार्थ ही है, उसे ज्ञान विद्यमानरूपसे कैसे न जाने? वस्तु तो सत् है न! विद्यमान है न! तो इस महाप्रभुको तू विद्यमान रूपसे जान न! आहा हा! जिसका अस्तित्व ही नहीं उसे विद्यमानवत् जाने; तो पूर्णानन्दका नाथ प्रभु वर्तमानमें विद्यमान ही है, मौजूद ही है, उसे जान! भाई! तेरी नजरके आलस्यके कारण विद्यमान प्रभुको देखना रह गया। जिसमें ज्ञान, आनन्द आदि गुणोंकी अनन्तताका अन्त नहीं ऐसा सच्चिदानन्द प्रभु विद्यमान ही है; उसे जान। ४७१

*

शुभभाव - जिन्हें कि दुनिया अभी धर्म मानती है, धर्मका कारण मानती है....ये आस्रव क्या हैं? - कि आकुलताको उत्पन्न करनेवाले हैं। शुभ और अशुभभाव (दोनों ही) आकुलताके उत्पादक हैं; आत्माकी शांतिके उत्पादक नहीं। अतः व्यवहारसे निश्चय हो सके - ऐसा संभव नहीं। शुभभाव आकुलताके उत्पादक होनेसे आत्माकी शान्ति अथवा धर्मके उत्पादक नहीं हैं। ४७२

*

भगवान आत्मा अनन्तगुण-स्वरूप प्रभु है। उसके एक-एक गुणमें अनन्त-अनन्त गुणोंका रूप है; पर उसमें रागका रूप नहीं है। एक समयके अनन्त-अनन्त गुणोंका सागर प्रभु है, उसके एक-एक गुणमें उसके अनन्त-अनन्त गुणोंका रूप है। एक गुण अन्य गुणमें नहीं, पर एक गुणका रूप दूसरे गुणमें है; परन्तु व्यवहाररत्नत्रयका राग आत्माका कोई गुण नहीं है, इसीलिए रागका रूप किसी गुणमें नहीं है। अतः भगवान आत्मा रागका कारण नहीं और राग अपनी आनन्दकी पर्यायका कारण नहीं है। ४७३

कुटुंब प्रतिबंध – अधोगतिका कारण!

श्रीमद् राजचंद्र, पत्रांक-५२८ पर प्रवचन
– सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

(गतांकसे आगे...)

यहाँ तो प्रश्न उठा है कि, 'स्त्री, पुत्र, आरंभ तथा परिग्रहके प्रसंगमेंसे यदि निजबुद्धि छोड़नेका प्रयास न किया जाये...' यहाँ प्रसंग माने उदय। उसमेंसे '...यदि निजबुद्धि छोड़नेका प्रयास न किया जाये तो सत्संगके सफल होनेका संभव कैसे हो?' किसी भी तरहसे सत्संग फलवान होगा ही नहीं, ये समझ लेना। इन दोनों बातोंको एक दूसरेसे मेल नहीं खायेगा। अपनत्वका प्रतिबंध छोड़ना नहीं है और सत्संगसे लाभ चाहना है, ये दो बात बननेवाली नहीं है। अतः वास्तवमें तो हमारा जिस प्रकारका सत्संग चलता है उसमें हररोज़ इसकी चर्चा करनी चाहिये। क्योंकि घरवालोंके साथ तो हररोज़का उदय है। स्वयंको बराबर जागृति रहनी चाहिये कि, मैंने कहाँ-कहाँ अपनत्व किया? मेरे परिणाम किस-किस प्रकारसे बह गये? और उसकी प्रतीति तुरंत आ जायेगी कि, इसी तरहके परिणाम पड़ोसीके लिये होते हैं क्या? पड़ोसीके बीच तो एक ही दीवार होती है, ज्यादा से ज्यादा एक ही कम्पाउन्डकी दीवार या मकानकी दीवार होती है। पड़ोसी इससे दूर नहीं होता। उसीको पड़ोसी कहा जाता है न! फिर भी इसके लिये ऐसा होता है क्या? या इसके (हमारे कुटुंबके) लिये ही ऐसा होता है? बस! तुरंत पकड़में आयेगा। तेरा अपनत्व और तेरा प्रतिबंध है इसीलिये ऐसा हो रहा है वरना ऐसा नहीं होता।



मुमुक्षु :- घरवालोंको पड़ोसी कर देना क्या?

पूज्य भाईश्री :- (हाँ), क्योंकि वे तो वास्तवमें पड़ोसमें ही रहते हैं। समीप रहते हैं इसका मतलब पड़ोसमें ही रहे हुए हैं, और कुछ नहीं है। पड़ोसीको मदद करना एक बात है और 'अपनत्व' करना उसमें तो पड़ोसीपन रहता ही नहीं। वह तो पड़ोसीपन रहता ही नहीं। वह तो स्पष्टरूपसे प्रतिबंध ही है।

'...जिस प्रसंगमें महा ज्ञानीपुरुष सँभल सँभलकर चलते हैं,...' क्या कहते हैं? महाज्ञानी हो, कुटुंब-परिवारका (योग) हो, अभी त्यागी नहीं हुए हो लेकिन महान ज्ञानी हो, फिर भी वे सँभल सँभलकर चलते हैं। (कृपालुदेव) स्वयं अनुभवकी ही बात लिखते हैं। अपने अनुभवकी ही बात लिखते हैं कि, हम बहुत सँभलकर चलते हैं।

‘उसमें इस जीवको तो अत्यंत अत्यंत सावधानतासे,...’ देखिये! दरकारकी बात आयी। कल दरकारकी चर्चा हुई थी। (मुमुक्षुको खुदको) बहुत दरकार होनी चाहिये। ‘उसमें इस जीवको तो...’ माने मुमुक्षु जीवको तो ‘अत्यंत अत्यंत सावधानतासे, संकोचपूर्वक चलना चाहिये, यह बात भूलने जैसी ही नहीं है, ऐसा निश्चय करके...’ अर्थात् ऐसे निर्धारपूर्वक, ऐसे निश्चयपूर्वक, निश्चयके बलपूर्वक ‘...प्रसंग-प्रसंगमें, कार्य-कार्यमें, और परिणाम-परिणाममें...’ अर्थात् हरएक उदयमें ‘...उसका ध्यान रखकर उससे छूटा जाये,...’ अर्थात् अपनत्वसे छूटा जाये, ‘...वैसे ही करते रहना, यह हमने श्री वर्धमानस्वामीकी छद्मस्थ मुनिचर्याके दृष्टान्तसे कहा था।’ जब सत्संग चला है तब कृपालुदेवने मौखिकरूपसे वर्धमानस्वामीकी मुनिचर्याके दृष्टान्तसे यह बात कही थी। इस तरह स्वयंने प्रत्यक्ष सत्संगका reference पत्रमें लिखा है कि, हमने ऐसा कहा था।

देखिये! कैसी बात की है! ‘जिस प्रसंगमें महा ज्ञानीपुरुष सँभल सँभलकर चलते हैं, उसमें इस जीवको तो अत्यंत अत्यंत सावधानतासे, संकोचपूर्वक चलना चाहिये,...’ (संकोचपूर्वक चलना चाहिये) माने क्या? बचकर चलना। जैसे कोई सँकरी पगडंडी – रास्ता हो और दोनों तरफ बेरके छोटे पौधे हो। छोटे बेरके पेड़ भी होते हैं और छोटे पौधे भी होते हैं। पौधे तीन-चार फुटके ही होते हैं। (बेरके पौधे) के पासमें चले तो काँटे सीधे कपड़ेमें फँस जाते हैं। सँकरा रास्ता हो इसलिये थोड़ा संकोचपूर्वक चलना पड़े, संक्षेपकर चलना

पड़े। वैसे कुटुंबरूपी घोंसला ऐसा है कि, परिणाम सहज ही फँस जाते हैं। परिणाम सहज ही फँस जाते हैं। बहुत सँभलकर और संकोचपूर्वक चलना माने बचकर चलना, अंदरमें अपने आपको सँभालना, यह बात कतई भूलने जैसी नहीं है – ऐसा निश्चय करना। ऐसा निश्चय करना अथवा तो ऐसा लक्ष्य हो जाये तो भूलने-नहीं भूलनेका सवाल ही नहीं रहता। यदि इस निश्चयकी परिणति बन गई और यह विषय लक्ष्यमें रह गया तो फिर स्मरण-विस्मरणका सवाल नहीं रहता। फिर सहजरूपसे जागृति रहती है। क्योंकि यह बात लक्ष्यमें ही है। मुझे कहीं भी अपनत्व होनेका प्रश्न ही नहीं हो सकता। अपनत्व होवे ही कैसे?

ऊपरकी भूमिकामें बहुत अच्छा प्रयोग होता है। वह प्रयोग इस प्रकारसे होता है कि, जीव सीधा अपने अस्तित्वको सँभाल लेता है। (वह ऐसे देखता है कि), ‘मेरी हयाती ही जब वहाँ नहीं है फिर अपनत्व होनेका प्रश्न ही कहाँ है? मेरे द्रव्य, गुण, पर्यायमें मेरा अस्तित्व समाप्त होता है। मेरा अस्तित्व वहाँ पूरा हो जाता है, समाप्त हो जाता है। फिर मैं वहाँ हूँ ही कहाँ? मेरेसे सब शून्य हैं।’

वैसे अभी जो संसारका स्वरूप है वह तो केवल स्वार्थका है। उसमें कोई दम नहीं। पूँछ दबते ही फूटकार मारेगा (सर्पकी माफिक)। परन्तु एक जमाना ऐसा भी था कि, जिसमें पूरा संसार बहुत स्नेहसे-कुटुंब स्नेहसे चलता हो, वहाँ भी ऐसे जागृत आत्माएँ होते हैं जो नहीं फँसते। अतिशय स्नेह व प्रेम होने पर भी अंतर जागृतितवान नहीं फँसते हैं। (उनको ऐसा ही लगता है कि),

ठीक है, ये सब खेल और ये सब नाटक है। जिसमें मुझे भुलावेमें पड़ने जैसा नहीं है। ऐसे प्रयत्न करनेवाले - पुरुषार्थ करनेवाले जीव भी होते हैं। अभी तो काल ही कोई विचित्र है!

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्रीको उनके बड़े भाईने कहा था कि, तू यहाँ पढ़ाई कर, तुझे कोई काम नहीं करना है। लेकिन तू दीक्षा मत ले। इस प्रसंगको अच्छे कालमें गिन सकते हैं?

पूज्य भाईश्री :- (नहीं), दीक्षाके पहले ऐसा नहीं हुआ था परन्तु दीक्षा लेनेके बाद जब उनके विचारमें बदलाव आया और खुदकी दीक्षा छोड़ देनेकी बात बड़े भाईको कही (तब ये प्रसंग बना था)। क्योंकि जब गुरुको बात कही थी तब गुरुने कहा था, कलसे आहार-पानी मिलना बंद हो जायेगा। स्थानकवासी संप्रदायमें जैसे ही यह बात करोगे कि, (भगवानकी) मूर्ति नहीं रखना, यह बहुत बड़ी भूल है, तो मार-पीट हो जायेगी और मारकर निकाल देंगे। तुझे कोई रोटी नहीं देगा और आहार-पानी बंद हो जायेगा। तब गुरुदेवश्रीको विचार आया कि, हमने कहाँ रोटीके लिये दीक्षा ली है! रोटी तो हमारे घर पर भी थी। हमने रोटीके लिये थोड़ी दीक्षा ली है! गरीब लोग दीक्षा ले लेते हैं लेकिन मैंने तो ऐसा नहीं किया है। इसलिये उन्होंने भाईको पूछा कि, 'मैं दीक्षा छोड़ देना चाहता हूँ, इसमें आपका क्या भाव है?' (क्योंकि) दीक्षा छोड़ दे फिर तो आहारके लिये कहीं जानेका सवाल पैदा नहीं होता और खाना-पीना तो घर पर ही होगा। फिर दूसरेके घर जानेका तो कोई प्रश्न नहीं रहता। बड़े भाईको गुरुदेव पर बहुत विश्वास था कि, ये मेरा भाई बहुत समझदार

है, जो भी कदम उठायेगा वह बहुत सोच-समझकर उठायेगा और वह जो कुछ भी करेगा वह आत्मकल्याणके हेतुसे ही करेगा। क्योंकि वह आत्मकल्याण करनेके लिये निकला हुआ जीव है। इसलिये दीक्षा ली है तो भी आत्मकल्याणके हेतुसे और अगर दीक्षा छोड़ेगा तो भी आत्मकल्याणके हेतुसे ही छोड़ेगा। इतना उन्हें विश्वास था! इसलिये उन्होंने गुरुदेवश्रीको कहा कि, कोई बात नहीं। तुझे आत्महित करना है न? तू खा-पीकर (शास्त्र लेकर) छत पर बैठ जाना, (कोई बात नहीं)। घर बैठकर आत्मकल्याण कर ले, अपने यहाँ कोई रोटीकी कमी नहीं है। आ जा घर वापिस।

जबकि गुरुदेवश्रीके पुण्य तो बहुत उच्च कोटिके थे। कुछ समयके लिये ऐसा हो गया कि, (दीक्षा छोड़नेके पश्चात्) सिर्फ चार लोग ही रहे थे। जैसे ही उन्होंने धमाका किया और मुहपत्ति छोड़ी तब एक दफा तो पूरा समाज विरुद्ध हो गया। (सिर्फ चार ही जन रहे)। जिसमें दो वढ़वाणके थे और दो राणपुरके थे। चारों के चारों झालावाड़ी ही थे। चार जन ही साथमें रहे थे कि, जैसे जहाँ आप वहाँ हम, हम आपके साथ ही हैं। फिर बादमें तो गुरुदेवश्रीका पुण्योदय बहुत होनेसे सब साथ होने लगे। लेकिन एक बार तो पूरा समाज विरुद्ध ही हो गया था और विरुद्ध हो गया था तो कितना विरुद्ध हो गया था पता है? खून-खराबा हो जाये इतना (विरुद्ध हो गया था)। खुलेआम धमकी देते थे कि, खून कर देंगे! इसलिये (वे चार जन) रात-दिन साथमें रहते थे। चौबीस घंटे पहरा देते थे कि, आपको

कुछ होने नहीं देंगे। इतनी उन लोगोंकी तैयारी थी! बहुत अच्छा समर्पण था। ऐसी-ऐसी बातें हैं।

अब गुरुदेवश्रीकी निस्पृहता देखो! इन्हीं बड़े भाईकी धर्मपत्नी भी सोनगढ़ आकर बस गई थीं। गुरुदेवश्री तो प्रभावशाली पुरुष थे। उनके उपदेशमें तो उन्हें भी अश्रद्धाका कोई सवाल नहीं था। इसलिये वे भी सोनगढ़ आकर बस गये। वे इतनी विचित्र परिस्थितिमें रहते थे फिर भी गुरुदेवश्रीने कभी किसीको इशारा तक नहीं किया कि आप उनका ध्यान रखें! कुदस्ती हमारे जिम्मे डेढ़ सालके लिये (संस्थाका) संचालन हाथमें आया, तब पहला ध्यान हमारा इस बात पर गया। गुरुदेवश्रीकी भाभी यहाँ रहती हैं, हम इनकी खबर तो लें। तब हम माजीके पास गये थे। (वहाँ जाकर देखा तो) माजीके घरका कोई ठिकाना नहीं था। घरमें कोई व्यवस्था नहीं थी। सब पूछ-पूछकर ठीक किया। हम लोग बार-बार उनकी सँभाल लेने जाते थे।

(गुरुदेवश्रीके देहांतके बाद) एकबार जब उन्हें fracture हुआ था, तब भावनगर (अस्पतालमें भरती किये थे)। यहाँ भावनगरमें सबको सूचना दे दी थी कि, ये गुरुदेवश्रीकी भाभी हैं। गुरुदेवश्रीने कभी किसीको कुछ भी नहीं कहा। बहुत बुरी हालतमें सोनगढ़में रहे हैं। ये तो समाजकी और भक्तोंकी बहुत बड़ी क्षति कही जायेगी। ऐसा ध्यान तो जाना ही चाहिये। फिर यहाँ भावनगरके मंडलके सदस्योंने बहुत अच्छी सेवा की थी, बहुत अच्छी सेवा की थी। यहाँ बहुत अच्छी सँभाल ली थी।

यहाँ हमारा मुद्दा जो है वह प्रतिबंधका है। जिस भाईने उन्हें इतना support किया था

(फिर भी) गुरुदेवश्रीको भाभीका कोई प्रतिबंध नहीं था। कभी सीधा भी नहीं कहा और किसीसे कहलवाया भी नहीं। किसीको मालूम ही नहीं होवे कि, उनकी भाभी यहाँ रहती हैं। इस तरह स्वयं रहे हैं कि, उनकी भाभी यहाँ रहती हैं, यह समाजमें किसीको मालूम ही नहीं पड़ा। देखो! गुरुदेवश्री कैसे रहे हैं!!

बादमें तो हमने पूरी सँभाल ली थी। घरकी मरम्मतसे लेकर हम हमारे घरमें जो सेवा देते हैं, इससे एक प्रतिशत ज्यादा सँभाल ली है, कम नहीं ली है। लेकिन गुरुदेवश्रीको प्रतिबंध नहीं था। गुरुदेवश्रीका यह एक जीवंत दृष्टांत हमें देखनेको मिलता है। ऐसी चीज़ मौजूद थी। प्रतिबंधका अभाव क्या चीज़ है! (यह देखना हो तो) आप देख लीजिये गुरुदेवश्रीको!! ऐसा प्रकार था! हमें ऐसा होना पड़ेगा, और उनके जैसे बननेमें लाभ है।

प्रतिबंधमें तो बहुत बड़ा नुकसान है। सीधा अधोगतिका ही कारण है, दुसरा कुछ नहीं। भले ही हमको कितना भी मीठा लगता हो, लेकिन अधोगतिके सिवाय उसका दूसरा कुछ फल नहीं है। इसकी भयंकरता लक्ष्यमेंसे छूटनी नहीं चाहिये; तभी प्रतिबंध छूटेगा वरना कभी भी नहीं छूटेगा।

मुमुक्षु :- खुद समझता भी है कि, अकेला आया और अकेला जानेवाला है, फिर भी प्रतिबंध नहीं छूटता है।

पूज्य भाईश्री :- (इसका मतलब) कि, परिणामन बहुत गाढ़ हो गया है। यह feeling बहुत गाढ़ हो गई है। इसे तोड़ने पर ही छुटकारा है। यहाँ तक रखते हैं।

मुमुक्षु – तत्त्व

‘मुमुक्षु प्रयोजन’ ग्रंथमेंसे लिये हुए प्रश्न और समाधान
– सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई



जिज्ञासा :- मैं कौन हूँ?

समाधान :- मैं ज्ञानलक्षणसे सदाय स्फुरित ऐसा ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ। अस्तित्वके ग्रहणपूर्वक साक्षात् परिणाम ही – रस जिज्ञासाका समाधान है; केवल कहनेरूप या विकल्परूप नहीं।

जिज्ञासा :- भवका बीज क्या है? इसके नाशका उपाय बतलाएँ।

समाधान :- अज्ञानदशामें आत्मा रागरहित पूर्ण चिदानंद होने पर भी रागसहित भासित हो रहा है, यह भवका बीज है।

‘वर्तमानमें ही शुद्ध, परिपूर्ण, चिदानंद हूँ’ – ऐसी प्रतीति, यह भवके नाशका कारण है। – ऐसी प्रतीति होनेके पश्चात् जो अल्प राग रहता है वह पररूप भासित होता है।

जिज्ञासा :- संसारमें दुःखका मूल क्या है और सुख कहाँ है?

समाधान :- पूर्वकर्म अनुसार प्राप्त संयोगमें, जो संयोग प्रगटरूपसे परद्रव्यरूप होनेके बावजूद भी उसमें अपनत्व मानकर जीव अपनेमें सुखकी कल्पना करता है, जो कि सर्वथा झूठ है, सबसे बड़ा झूठ है। जिसका दंड चार गतिका परिभ्रमण है और जन्म-मरणादि दुःख है। सुख तो चैतन्यके विलासमें उत्पन्न होता है।

जिज्ञासा :- संसारी जीव क्यों दुःखी है?

समाधान :- परिणामका स्वभाव एकत्व करनेका है। स्वरूपमें ही एकत्व हो ऐसा द्रव्य स्वभाव है। परंतु स्वस्वभावसे अनभिज्ञ ऐसा यह जीव अनादिसे परमें एकत्व करके, ममत्व करके दुःखी हो रहा है।

जिज्ञासा :- आत्मार्थीको कहीं चौकन्ना रहने जैसा है तो वह क्या है?

समाधान :- आत्मार्थी जीवको लोकसंज्ञाके परिणाममें खास करके चौकन्ना रहने जैसा है। इसमें भी सामूहिक कार्यक्रममें दूसरोंको अच्छा लगाना या दूसरे लोग मुझे अच्छा लगे वैसा करे, ऐसा भाव जब भी हो तब आत्मार्थी जीवको अंतरमें अपने आपसे पूछने जैसा/अवलोकन करने जैसा है कि, अरे जीव! ऐसा परम दुर्लभ, परम सत्य सुनने मिला है, तो अब तुझे किस-किसको राजी रखना है और किस-किससे तुझे राजी होना है? और ऐसा राजी रखना और होना – यह कब तक तुझे करते रहना है? हे जीव! सत्यमार्गसे तनिक भी विचलीत होना उचित नहीं है। ऐसे अविचल

रहनेके पुरुषार्थ करते हुए जो भी परिस्थिति पैदा हो जाये-उसका स्वीकार करनेकी पूरी तैयारी अभिप्रायमें होनी चाहिये। ऐसा करने पर अपने स्वरूपमें स्थिर होते हुए राजी (निराकुल सुखरूप) हो सकोगे।

जिज्ञासा :- मुमुक्षुजीवकी तत्त्वरुचि कैसी होती है?

समाधान :- तत्त्वकी बातें चर्चा, श्रवण आदि - स्वस्वरूप प्रत्ययी पुरुषार्थ, रुचि या भावनाके बिना - सब मनोरंजन या विषयसेवनवत् हो जाता है। अतः मुमुक्षुजीवको तत्त्वज्ञानकी प्रवृत्तिमें अपने भावोंकी जाँच करते रहना चाहिये वरना स्वको छोड़कर यह प्रवृत्ति जो कि बाह्य विषय यानी कि बहिर्मुखभावका विषय है, वह वंचनाबुद्धि से चलता रहेगा। वास्तवमें बाह्य तत्त्वप्रवृत्तिके कालमें भी बाह्यप्रवृत्तिकी गौणता और स्वरूपकी मुख्यता रहनी चाहिये। तब तो तत्त्वरुचि है। अंतरतत्त्वकी रुचि हो वहाँ शुरूआतसे पर्यायकी गौणता हो जाती है। भले ही पर्यायमें प्रतिक्षण विकास वृद्धिगत होता हो तो भी इस पद्धतिसे वह गौण ही रहता है। अतः 'यह' यथार्थ पद्धति है।

जिज्ञासा :- 'पूर्णताके लक्ष्यसे शुरूआत' - इसमें 'द्रव्य'की पूर्ण शुद्धता लेनी है या 'पर्याय'की या दोनों की? ज्ञानी क्या कहना चाहते हैं?

समाधान :- पूर्णताके लक्ष्यसे शुरूआत ही वास्तविक शुरूआत है - इस सूत्रमें पर्यायकी पूर्ण शुद्धता लेनी है! ऐसी शुरूआत होनेके पश्चात् जब आत्मार्थीको अंतर शोध चालू होती है तब पूर्ण द्रव्यका लक्ष्य यानी भावभासन आत है। अतः कोई भी अंतर शोधक जीव प्रथम मोक्षार्थी होता है बादमें आत्मार्थी बनता है। (शेष अंश आगेके अंकमें...)



नया प्रकाशन (सिर्फ गुजराती भाषामें)

‘अध्यात्म पिपासा’ (भाग-७)

प्रशममूर्ति धन्यावतार पूज्य बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चाका ग्रंथ ‘स्वानुभूतिदर्शन’ पर अध्यात्मयोगी पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचनोंकी श्रृंखला ‘अध्यात्म पिपासा’ भाग-७ (केवल गुजरातीमें) पूज्य भाईश्री की ९४ वीं जन्म जयंतीके अवसर पर दि : १७-१२-२६ को प्रकाशित किया जायेगा। जो मुमुक्षु गुजराती भाषासे परिचित हों और इसके स्वाध्यायके लिये इच्छुक हों वे अपनी प्रत दि: ३०-१०-२६ तक रजिस्टर करवा लें।

- श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

श्री नीरव चोरा  ९८२५०५२९१३

निर्विकल्प होनेका एक ही उपाय – भेदज्ञान

तत्त्वचर्चा मंगलवाणी-सीडी-१६-A

- प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन



मुमुक्षु :- उनका ऐसा कहना है कि पहलेसे ही ध्रुव आत्मा को ध्येय बनाने जाये और द्रव्य-पर्याय स्वरूप आत्मा को नहीं जाना हो अथवा स्वद्रव्य एवं परद्रव्य का स्वरूप नहीं जाना हो तो प्रथमसे ही यह कर्तव्य है, तो किसप्रकारसे है?

समाधान :- करने जैसा तो यह एक ही है, लेकिन वह एक ध्येय में आये कैसे? उसे जाने तो आये न। उसका स्वरूप, द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप जाने तो ही वह ध्येय में आता है। वरना सत्यरूपसे ध्येय में नहीं आता। उसमें सब आ गया। तू द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप यथार्थ पहचान, स्व-पर का भेदज्ञान, उसे पहचान, उसका भेदज्ञान कर, यह सब उसमें आ जाता है। यह पर है, यह स्व है, यह विभाव है, यह स्वभाव है। यह द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, सब पहचाने तो उसे ध्येय में आयेगा। समझे बिना उसका ध्येय यथार्थ कैसे होगा?

मुमुक्षु :- आप कहते हो कि ज्ञायक आत्मा का ध्येय है तो हमने ज्ञायक को ध्येय बनाकर, मैं ज्ञायक हूँ ऐसा अनुभव करते रहे।

समाधान :- लेकिन वह एक ज्ञायक ध्यान में, लक्ष्य में आये कैसे? ज्ञायक को पहचाने बिना ज्ञायक कैसे आयेगा? ज्ञायक का ध्येय कैसे होगा पहचाने बिना? उसमें आया न? अनन्त गुणस्वरूप एक आत्मा। अनन्त गुण पर दृष्टि नहीं करके एक आत्मा पर, एक ज्ञायक को लक्ष्य में ले तो अनन्त गुण आत्मा में है, उसकी पर्याय है, यह सब पहचाने तो वह भेदस्वरूप नहीं है, टुकड़े नहीं हैं, परंतु एक आत्मा एक स्वरूप है, ऐसा लक्ष्य में ले। ऐसा उसके अन्दर आ जाता है।

मुमुक्षु :- .. वह तो उसे पहले जानना ही चाहिये।

समाधान :- विस्तारसे जाने या संक्षेपसे जाने, लेकिन जानना बीच में आ जाता है। जो ऐसा जाने कि यह पर और यह स्व, यह विभाव, यह स्वभाव, ऐसे जो भेदज्ञान करता है, उसमें जानना इतना आया कि यह विभाव और यह स्वभाव, यह पर और यह स्व, लेकिन स्व को जाने उसमें स्वयं को भेदरूप नहीं जानकर मैं एक अखण्ड तत्त्व हूँ, ऐसा साथ में आ जाता है।

शिवभूति मुनि, वह स्त्री दाल और छिलका अलग करती थी। गुरु का आशय समझ गये। गुरु को ऐसा कहना था कि यह दाल और छिलका जैसे भिन्न हो जाता है, वैसे तू और यह विभाव दोनों भिन्न

हैं। इसप्रकार भेदज्ञान कर। अर्थात् एक को लक्ष्य में ले लिया, बस। एक को लक्ष्य में लिया उसमें उसे गुण-पर्याय सब का ज्ञान साथ में आ जाता है। यह ज्ञायक, उसका स्वभाव पहचान लिया कि यह ज्ञायक है वह परिणतिवाला है, वह कूटस्थ नहीं है, अभेद है। उसके गुणों के भेद टुकड़े नहीं हैं। सब उसमें साथ में आ जाता है, समावेश हो जाता है। यथार्थ प्रकारसे ज्ञायक को लक्ष्य में ले तो। लेकिन संक्षेपसे, ऐसा कोई पात्र हो तो उसे जल्दी हो जाता है। लेकिन दूसरे जो अधिक नहीं समझते तो उतने संक्षेप में कोई समझ जाता है, बाकी विचार करे, पहचाने, स्वभाव बराबर पहचाने, द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, उसे अमुक प्रकारसे जाने तो ही उसे लक्ष्य में आता है।

मुमुक्षु :- कुछ आगम का अभ्यास भी उसे..

समाधान :- आगम का अभ्यास होता है, सब होता है। सब बीच में आता है। लेकिन इसमें इतना ही जाना चाहिये और इतना ही अभ्यास होना चाहिये या आगम का अभ्यास अधिक करे तो ही समझ में आये ऐसा नहीं है। थोड़ा समझे, आगम में क्या कहना है उसका आशय समझे तो भी हो सकता है। गुरु का आशय समझ ले तो भी हो सकता है। और उसमें यह द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप, स्व-पर का भेदज्ञान सब का उसमें समावेश हो जाता है। संक्षेपसे या विस्तारसे, परन्तु आ जाता है।

*

(तत्त्वचर्चाका शेष अंश आगेके अंकमें...)

करुणासागर 'पूज्य भाईश्री शशीभाई' की ९४वीं जन्म-जयंती महोत्सव पर धार्मिक कार्यक्रम

मुमुक्षुजीवों के परम तारणहार पूज्य भाईश्री शशीभाई की आगामी ९४वीं जन्म जयंती महोत्सव मार्गशीर्ष सुदी-४, दि. १३-१२-२०२६ से मार्गशीर्ष सुदी-८, दि. १७-१२-२०२६ पर्यंत अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनायी जायेगी। इस प्रसंग पर मंडल विधान पूजन, पूज्य भाईश्री के ऑडियो एवं विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य गुरुदेवश्री के विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की तत्त्वचर्चा, भक्ति, सत्संग, सांस्कृतिक कार्यक्रम रहेंगे और दि. १६-१२-२०२६ के दिन जिनेन्द्र रथयात्रा का कार्यक्रम रहेगा। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षु निम्नलिखित पते पर पहुँचनेकी तारीख लिखें, जिससे उनकी आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

संपर्क: श्री राजेन्द्र जैन, मो. ९८२५१५५०६६

कार्यक्रम स्थल :- श्री शशीप्रभु साधना-स्मृति मंदिर, प्लोट नं. १९४२-बी, शशीप्रभु चौक, रूपाणी सर्कल के पास, भावनगर-३६४००१



‘दृष्टिका परिणामन और दृष्टिका विषय’

– ‘द्रव्यदृष्टि प्रकाश’ – पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी

शक्तिकी तरफ़ देखे तो इतना भारी-भारी लगता है कि संपूर्ण जगत् फिर जावे तो भी वह (अनंत शक्तियोंका पिण्ड) नहीं फिर सकता है, ऐसा घनरूप है; उसमें कुछ विचलितता ही नहीं होती। ७६.

*

दर्पणमें जो पर्याय दिखती है, वह तो ऊपर-ऊपर है, अंदरमें जो दल पड़ा है वह तो जैसा का तैसा है, वह पर्यायरूप होता ही नहीं। – ऐसे त्रिकाली स्वभावका दल

वैसा का वैसा ही है, पर्यायमें आता ही नहीं। ७८.

*

प्रश्न :- चौथे गुणस्थानवालेको वस्तुका अनुभव है और स्थिरताका प्रयत्न भी करता है फिर भी अनुभवमें काल क्यों लगता है?

उत्तर :- चारित्रकी पर्यायमें इतनी अस्थिरता है, पुरुषार्थकी कमी है, पर्यायकी ऐसी योग्यता है, लेकिन दृष्टिमें उसकी गौणता है। ‘वर्तमानमें ही पूर्ण हूँ’ – इसमें पर्यायकी कमती – बढ़ती गौण है। ९५.

*

अरे भाई! तू अपने सारे के सारे असंख्य प्रदेशमें चैतन्यमूर्ति हो, उसीमें बैठे रहो न! उठकर कहाँ जाते हो? ११५.

*

शुभरागको कर्तव्य माननेकी तो बात ही कहाँ? ‘मेरा’ तो कोई कर्तव्य ही नहीं, ऐसा पहले पक्का होना चाहिए। (ध्रुवमें कर्तव्य कैसे हो सकता है? ‘मैं तो ध्रुवतत्त्व हूँ।’) १५९.

*

इधर (स्वद्रव्यमें) दृष्टि जम गयी.... बस, वही मुक्ति है; मुक्ति करनी नहीं है। १६१.

*

वस्तु वर्तमानमें प्रत्यक्ष स्थित है, वर्तमानमें ही विद्यमान है। एक समयकी पर्यायके पीछे पूर्ण वस्तु स्थित है; लक्ष्य करे उसी क्षण दिख जाती है। (अर्थात् वेदनमें आ जाती है।) १८०.

अहो! पूज्य गुरुदेवश्रीकी निरपेक्ष वृत्ति!

– सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई



मिथ्यात्व अवस्थामें जब ऐसे कोई कर्मोंका बंधन होता है जिसका उदय ज्ञानदशामें आता है और न केवल ज्ञानदशामें मुनिदशा पर्यंत आता है। मुनिराजको, महामुनिराज हो उन्हें भी महारोग होता है। सनतकुमार चक्रवर्ती।



(मुनियों)को भी कोई पशु मार दे, चीर डाले और जिनके अग्निसंस्कार करनेवाला भी कोई न हो वहाँ पर।

‘पूज्य गुरुदेवश्री’ जब विशेष वैराग्यमें आते थे तब ऐसा गाते थे।

‘चलो सखी वहाँ जाईये, जहाँ न अपना कोई।

शरीर भखे जनावरा, मुआँ न रोए कोई॥’

यानी जहाँ मरनेके पश्चात् कोई रोनेवाला न हो, एक भी व्यक्ति आँसू गिरानेवाला न हो और शरीर भी पशु खा जाये, हमें तो वहाँ जाना है, ऐसा कहते थे। कितनी निरपेक्षवृत्ति थी उनकी!! निरपेक्षवृत्तिका प्रकाशक/द्योतक हैं ऐसे वचन कि हमें किसी भी प्रकारकी अपेक्षा नहीं है। हम तो कब जंगलमें चले जायें जहाँ कोई अपना न हो वहाँ चले जायें। फिर वहाँ शरीर छूट जाने पर कोई रोनेवाला न हो और शरीरको भले ही पशु खा जाये परंतु वहाँ जाना है। वहाँ जाना है। ऐसे वैरागी थे!!

(प्रवचनांश... ‘श्रीमद् राजचंद्र’, पत्रांक-४११, दि. २५-११-९८, प्र. क्र.-७७७)

*

आभार

‘स्वानुभूतिप्रकाश’ (अक्टूबर-२०२६, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि

श्रीमती वंदनाबहिन रणधीर घोषाल, कोलकाता

की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।

अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।



प्रणिपात स्तुति

हे परमकृपालु देव! जन्म, जरा, मरणादि सर्व दुःखोंका अत्यंत क्षय करनेवाला वीतराग पुरुषका मूलमार्ग आप श्रीमानने अनंत कृपा करके मुझे दिया, उस अनंत उपकारका प्रत्युपकार करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ, फिर आप श्रीमान कुछ भी लेनेमें सर्वथा निःस्पृह हैं; जिससे मैं मन, वचन, कायाकी एकाग्रतासे आपके चरणारविंदमें नमस्कार करता हूँ। आपकी परमभक्ति और वीतराग पुरुषके मूलधर्मकी उपासना मेरे हृदयमें भवपर्यंत अखण्ड जागृत रहे, इतना माँगता हूँ, वह सफल हो।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

*

क्षमापना

हे भगवन्! मैं बहुत भूल गया, मैंने आपके अमूल्य वचनोंको ध्यानमें लिया नहीं। आपके कहे हुए अनुपम तत्त्वोंका मैंने विचार किया नहीं। आपके प्रणीत किये हुए उत्तम शीलका सेवन किया नहीं। आपकी कही हुई दया, शान्ति, क्षमा और पवित्रताको मैंने पहचाना नहीं। हे भगवन्! मैं भूला, भटका, घूमा-फिरा और अनंत संसारकी विडंबनामें पड़ा हूँ। मैं पापी हूँ। मैं बहुत मदोन्मत्त और कर्मरजसे मलिन हूँ। हे परमात्मन्! आपके कहे हुए तत्त्वोंके बिना मेरा मोक्ष नहीं। मैं निरंतर प्रपंचमें पड़ा हूँ। अज्ञानसे अंध हुआ हूँ, मुझमें विवेकशक्ति नहीं है और मैं मूढ़ हूँ, मैं निराश्रित हूँ, अनाथ हूँ। नीरागी परमात्मन्! मैं अब आपकी, आपके धर्मकी और आपके मुनियोंकी शरण लेता हूँ। मेरे अपराधोंका क्षय होकर मैं उन सब पापोंसे मुक्त होऊँ यह मेरी अभिलाषा है। पूर्वकृत पापोंका मैं अब पश्चात्ताप करता हूँ। ज्यों-ज्यों मैं सूक्ष्म विचारसे गहरा उतरता हूँ त्यों-त्यों आपके तत्त्वोंके चमत्कार मेरे स्वरूपका प्रकाश करते हैं। आप निरागी, निर्विकारी, सच्चिदानंदस्वरूप, सहजानंदी, अनंतज्ञानी, अनंतदर्शी और त्रैलोक्यप्रकाशक हैं। मैं मात्र अपने हितके लिये आपकी साक्षीमें क्षमा चाहता हूँ। एक पल भी आपके कहे हुए तत्त्वोंकी शंका न हो, आपके बताये हुए मार्गमें अहोरात्र मैं रहूँ, यही मेरी आकांक्षा और वृत्ति हो! हे सर्वज्ञ भगवन्! आपसे मैं विशेष क्या कहूँ? आपसे कुछ अज्ञात नहीं है। मात्र पश्चात्तापसे मैं कर्मजन्य पापकी क्षमा चाहता हूँ। - ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

(‘श्रीमद् राजचंद्र’ शिक्षापाठ-५६)

‘स्वानुभूतिप्रकाश’ पत्रिका सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचना

जयजिनेन्द्र! इससे यह सूचित किया जाता है कि ‘स्वानुभूतिप्रकाश’ आध्यात्मिक मासिक पत्रिका हिन्दी/गुजरातीमें पिछले २८ सालसे आपके स्वाध्याय हेतु भेजी जा रही है। अब इसे काफ़ी समय होनेसे कई पते बदल चुके हो या पत्रिकाका सदुपयोग न होकर किसी भी प्रकारकी असातना होनेकी संभावितताको देखते हुए यह पत्रिकाको आगे प्राप्त करनेके इच्छुक सभी मुमुक्षुओंको पुनः अनिवार्यरूपसे अपने पतेका **registration** करवाना होगा – ऐसा ट्रस्ट द्वारा नक्की किया गया है।

इसके तहत आगामी अक्टूबर-२०२६ तककी समयसीमामें अपने पतेकी पूरी जानकारी नीचे दिये गये फॉर्ममें लिखकर इसकी फ़ोटो हमारे **whats app** नं. ९४०८३०३१५२ पर भेजना होगा। **नवम्बर-२०२६ से केवल पुनः registered पते पर यह पत्रिका भेजी जायेगी।** जो मुमुक्षु अपना **registration** नहीं करवायेंगे उन्हें इस पत्रिकाकी उपयोगिता एवं आवश्यकता नहीं है यह समझकर उन्हें यह पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। कृपया इस बातको ध्यानमें लेंवे।

आपको हार्ड कॉपी या **pdf file** या दोनों – जिसकी भी आवश्यकता हो उसे बॉक्समें टिक करें।

–प्रबंध ट्रस्टी

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

हार्ड कॉपी ☐ pdf फ़ाइल ☐

वर्तमान रजिस्टर्ड नं. :- _____

नाम :- _____

पता :- _____

पिनकोड:- _____

मोबाइल नं :- _____

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026

RENEWED UPTO : 31/12/2026

R.N.I. NO. : 70640/97

Title Code : GUJHIN00241

Published : 10th of Every month at BHAV.

Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS

Total Page : 20

‘सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे’



... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर एस्टेट, बारडोलपुरा, अहमदाबाद - ३८० ०१६ से मुद्रित एवं १९४२ - बी, शशीप्रभु मार्ग, रूपाणी, भावनगर - ३६४ ००१ से प्रकाशित ।

संपादक : श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा - 98250 52913

If undelivered please return to ...

Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir

1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

Printed Edition : **3450**

Visit us at : <http://www.satshrut.org>